26

''दोष मत लगाओ''

मत्ती 7:1-12;
1, 2 आयतों पर एक निकट दृष्टि

मसीही जीवन की एक चुनौती लोगों के साथ मिलकर रहना है। यीशु इसे समझता था, इसलिए उसने सम्बन्धों के बारे में पहाड़ी उपदेश में काफ़ी कुछ कहा। उसने दूसरों पर दयावन्त होने (5:7) और मेल करवाने वाले होने के लिए कहा (5:9)। उसने हर सुनने वाले को अच्छा प्रभाव देने के लिए प्रोत्साहित किया (5:13-16)। उसने भाई के साथ क्रोधित होने के लिए नहीं, बल्कि उससे मेल करने के लिए कहा (5:21-26)। मसीह ने हमें यह भी बताया कि हानि पहुंचाने की कोशिश करने वालों (अर्थात, अपने शत्रुओं) के साथ हमारा कैसा सम्बन्ध होना चाहिए (5:38-48)। अब हम इस विषय पर यीशु की शिक्षा के पूरे भाग अर्थात मत्ती 7:1-12 पर आते हैं। इन बारह आयतों में दूसरों के साथ हमारे सम्बन्ध के बारे में काफ़ी कुछ बताया गया है।

पहाड़ी उपदेश हमारे जीवनों पर चमकने वाले प्रकाश बिन्दु की तरह है, जो हमारी कमियों को दिखाता है। इस और अगले प्रवचन में परमेश्वर के वचन की सर्च लाइट आप पर पड़ने से आपको कुछ असुविधा हो सकती है। इस बात को समझें कि मैंने घण्टों तक वचन का अध्ययन करते हुए अलग-अलग अनुवादों को बार-बार पढ़कर ये पाठ तैयार किए हैं। मैंने कमैन्ट्री के तीन सौ से अधिक पन्ने पढ़े, उन पर निशान लगाए और उन पर विचार किया। इस सारे समय प्रकाश *मुझ* पर पड़कर मेरी कमियों को ही दिखाता रहा। मेरा सामना बुरे व्यवहार से हुआ है और यह उन्हीं पर केन्द्रित है। आपको कुछ मिनट तक बुरा लग सकता है, परन्तु यकीन मानें कि इस अध्ययन के दौरान मैं कई घण्टे परेशान रहा था।

1 से 12 आयतों का विस्तार से अध्ययन करने से पहले, शायद मुझे आपको बता देना चाहिए कि मैंने दूसरों के साथ सम्बन्ध रखने पर अपने प्रवचनों में इस पूरे भाग को क्यों शामिल किया है। थोड़ा-बहुत स्पष्ट है कि 1 से 6 आयतें दोष लगाने और पवित्र वस्तुएं कुत्तों के आगे न डालने के बारे में बताते हुए सम्बन्धों पर भी बात करती हैं। फिर, 7 से 11 आयतों में यीशु ने प्रार्थना और इसकी प्रभावकारी शक्ति के बारे में सिखाया। हमें लग सकता है कि उसने सम्बन्धों के विषय को छोड़ दिया-आयत 12 के अलावा जो ''इस कारण'' कहकर फिर दूसरों के साथ मिल जुलकर रहने पर अन्तिम निर्देश देती,

अर्थात सुनहरा नियम देती है। ''इस कारण'' शब्द संकेत देता है कि यीशु अपने विषय को समेट रहा था अर्थात इसे संक्षिप्त करते हुए निष्कर्ष पर आ रहा था। इसलिए, 7 से 11 आयतें *किसी प्रकार* पूरे विषय से जुड़ी हुई हैं। इस कारण लोगों के साथ रहने के अपने विषय में हम 1 से 12 आयतों को ही शामिल करेंगे।

बाइबल की इन आयतों से मैं छह सच्चाइयां अर्थात दूसरों के साथ रहने के लिए छह अनिवार्यताएं बताऊंगा। इस प्रवचन में मैं केवल इनमें से पहली दो आयतों पर ही बात करूंगा।[1] पहली दो आयतें दोष लगाने के बारे में हैं, इसलिए मैं इस प्रस्तुति को ''दोष मत लगाओ'' नाम दे रहा हूं। अगले प्रवचन में बाकी पांच सच्चाइयों पर चर्चा करूंगा।

प्रेमपूर्वक रहने की आवश्यकता #1:
हम दोष लगाने वाले होना बन्द कर दें (आयतें 1, 2)।

जो यीशु ने आज्ञा दी (आयत 1क)

यदि हम दूसरों के साथ मिलकर रहना चाहते हैं, तो यीशु ने पहले यह कहा कि *हम दोष लगाने वाले न हों।* इस पद का आरम्भ होता है, ''दोष मत लगाओ'' (आयत 1क)। मूल शास्त्र में, इसका जो रूप इस्तेमाल किया गया है, उससे यह संकेत मिलता है कि उसके सुनने वालों को *बन्द* करना आवश्यक था। विलियम्स के अनुवाद में ''दूसरों की आलोचना बन्द करो'' है।[2]

पहली बार, यह सम्बन्धों पर भाग अर्थात सुनहरे नियम वाले भाग से समाप्त होने वाले भाग को आरम्भ करने का नकारात्मक ढंग लगता है। यीशु द्वारा इसे इस तरह आरम्भ करने के कई कारण होंगे।

एक विश्वव्यापी आवश्यकता को पूरा करना

हो सकता है कि मसीह ने दोष लगाने की चेतावनी के साथ इसलिए आरम्भ किया हो, क्योंकि उसके सब सुनने वालों को-जिनमें *हम* भी शामिल हैं, इस ताड़ना की आवश्यकता थी। चौबीस घण्टों में शायद ही हम में से कोई होगा जो मत्ती 7:1 वाली यीशु की आज्ञा का उल्लंघन न करता हो। इस एक आज्ञा को मानने की असफलता से बढ़कर सम्बन्ध खराब करने वाली और कोई चीज़ नहीं है।

बुरे प्रभाव को दूर करना

एक और सम्भावना यह है कि यीशु ने दोष लगाने के विषय से इसलिए आरम्भ किया, क्योंकि शास्त्री और फरीसी हमेशा उसके दिमाग में रहते थे। वे हर जगह उस पर आरोप लगाने का कोई न कोई बहाना ढूंढ़ने के लिए उसके पीछे-पीछे रहते थे (लूका

6:1-7)। उसके शत्रु (जिनमें फरीसी भी थे) पहले ही उसे मारने की योजना बना रहे थे (यूहन्ना 5:18)।

इसलिए, पहाड़ी उपदेश में, यीशु ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनके कई हवाले दिए। मत्ती 5:20 में उसने कहा, ''यदि तुम्हारी धार्मिकता शास्त्रियों और फरीसियों की धार्मिकता से बढ़कर न हो तो तुम स्वर्ग के राज्य में कभी प्रवेश करने न पाओगे।'' अध्याय 5 के पिछले भाग में, मसीह ने व्यवस्था से जुड़ी परम्पराओं के साथ अपनी शिक्षा की तुलना की; ये परम्पराएं या रीतियां फरीसियों द्वारा आरम्भ की गई थीं। अध्याय 6 के पहले भाग में, यीशु ने उन कपटियों की बात की, जो दान देते समय तुरहियां बजवाते, सड़कों और बाज़ारों में लम्बी-लम्बी प्रार्थनाएं करते और उपवास रखकर सब को दिखाना चाहते थे कि उन्होंने उपवास रखा है। उसकी व्याख्याओं में हर कोई फरीसियों को पहचान लेता होगा।[3]

शास्त्री और फरीसी वैसे ही दोष लगाने के दोषी थे, जिसकी यीशु बात कर रहा था। वे समाज के बहुत बड़े भाग, अर्थात चुंगी लेने वालों (लूका 18:9-14), सामरियों और अन्यजातियों पर दोष लगाते थे। इसके अलावा, वे अपने आप को सबसे श्रेष्ठ मानते थे। वे दूसरों को तिरस्कार से देखते थे और उन पर बहुत कम तरस खाते थे। यदि हम दूसरों के साथ रहना चाहते हैं, तो हमारी धार्मिकता शास्त्रियों और फरीसियों से बढ़कर होनी आवश्यक है।

एक नकारात्मक पहलू को दूर करना

यीशु ने इस प्रकार इसलिए भी आरम्भ किया हो सकता है, क्योंकि वह सकारात्मक पर जाने से पहले सम्बन्धों के नकारात्मक पहलू को दूर करना चाहता था। कई बार फूल लगाने से पहले, ज़मीन में से घास-फूस निकालना आवश्यक होता है।

इसका जो भी कारण रहा हो, मसीह ने इस बात से आरम्भ किया: ''दोष मत लगाओ कि तुम पर भी दोष न लगाया जाए।''

जो कहने का यीशु का अर्थ नहीं था (आयत 1क)

सांसारिक सोच वाले और बाइबल के अनपढ़ लोग मुट्ठी भर आयतों की जानकारी रखते हैं और यह आयत उन्हीं में से एक है।[4] वे विशेषकर इस वाक्यांश को अधिक जानते होंगे कि ''दोष मत लगाओ कि तुम पर भी दोष न लगाया जाए।''

अपने अनुभव में मैंने ये शब्द कई दोषियों या दोषियों से हमदर्दी रखने वालों के मुंह से सुने हैं: ''दोष मत लगाओ कि तुम पर भी दोष न लगाया जाए।'' ये लोग इन शब्दों का यह अर्थ निकालते हैं कि हमें कभी यह नहीं कहना चाहिए कि कोई गलत है या मन फिराकर अपना जीवन न बदलने वाले पापी को भयंकर परिणाम भुगतने पड़ेंगे।[5] *क्या* यीशु यही सिखाना चाहता था?

यह ध्यान देने से पहले कि मत्ती 7:1 वाले ''दोष'' शब्द का *क्या* अर्थ है, मैं यह ज़ोर

देना चाहता हूं कि इसका अर्थ ज़्या *नहीं* है। [अंग्रेज़ी की बाइबलों में इसकी जगह ''न्याय करना'' है-अनुवादक।]

सरकारी न्याय के विरुद्ध नहीं

ज़्योंकि बाइबल अपने आप से कोई विरोधाभास नहीं है, इसलिए यीशु के शब्दों का यह अर्थ *नहीं* है कि हमें सरकारी निर्णय (अर्थात, देश के न्यायालय के निर्णय) को नहीं मानना चाहिए। परमेश्वर ने सरकार को न्याय करने का अधिकार दिया है (देखें 1 पतरस 2:13, 14; तीतुस 3:1; रोमियों 13:1)।

कलीसिया के अनुशासन को खत्म करना नहीं

कुछ लोगों की प्रतिक्रिया होगी, ''*नि:संदेह,* यह आयत सरकारी निर्णयों के बारे में नहीं है। यह तो किसी मण्डली या उसके ऐल्डरों को अपने सदस्यों पर यह कहकर कि वे गलत हैं और उन्हें दण्ड मिलना चाहिए, दोष लगाने की निन्दा करना है!'' कलीसिया के बाहर के लोग ही नहीं, बल्कि कलीसिया के कुछ सदस्यों की भी यही सोच है। एक मण्डली के ऐल्डर ने मुझसे कहा, ''जहां मैं ऐल्डर हूं वहां हम कभी किसी को अपनी संगति से नहीं निकालते। ज़्योंकि यीशु ने कहा है, 'दोष मत लगाओ, कि तुम पर भी दोष न लगाया जाए।'''

मैं फिर कहता हूं कि बाइबल का अपने आप में कोई विरोधाभास नहीं है। इसलिए मत्ती 7:1 यह *नहीं* सिखाता कि हमें कलीसिया में अनुशासन नहीं रखना चाहिए। यीशु, जिसने कहा कि ''दोष मत लगाओ,'' उसने कलीसिया में अनुशासन रखना भी सिखाया है (मत्ती 18:15-17)। जब उसने सारी सच्चाई में प्रेरितों की अगुआई के लिए पवित्र आत्मा भेजा (यूहन्ना 16:13), तो उसने कलीसिया के अनुशासन की आवश्यकता पर पौलुस और दूसरे लोगों पर जबर्दस्त वचन प्रकट किए (1 कुरिन्थियों 5:5, 9; 2 थिस्सलुनीकियों 3:6, 14, 15; तीतुस 3:9-11)।

व्यक्तिगत दोषारोपण नहीं

कोई और उज़र दे सकता है, ''इस आयत में कलीसिया के अनुशासन की बात हो सकती है, परन्तु कम से कम यह इस बात की शिक्षा देती है कि व्यक्तिगत तौर पर मसीही होने के नाते हमें यह कहने का अधिकार कभी नहीं मिलता कि कोई दूसरा नैतिक तौर पर या शिक्षा के आधार पर गलत है।''

एक बार फिर, मैं यह ज़ोर देना चाहूंगा कि बाइबल अपने आप में उलझती नहीं है। यह सच है, इसलिए मत्ती 7:1 यह *नहीं* सिखाता कि हम दूसरों पर कभी दोष नहीं लगा सकते। अगले प्रवचन में, हम आयत 6 का अध्ययन करेंगे, जो कहती है, ''पवित्र वस्तु कुज़ों को न दो, और अपने मोती सूअरों के आगे मत डालो; ...'' इस आज्ञा को हम ''कुज़ों'' और ''सूअरों'' को पहचाने बिना पूरा नहीं कर सकते। यदि आपने इस पाठ से

सम्बन्धित आयतें पढ़ी हैं तो आपको पता होना चाहिए कि मत्ती 7:15-20 झूठे भविष्यवक्ताओं के बारे में चौकस करते हुए कहता है कि हम झूठे भविष्यवक्ताओं को उनके परिश्रम के ''फल'' से पहचान सकते हैं: ''उनके फलों से तुम उन्हें पहचान लोगे'' (आयत 16क)। प्रचारक कई बार कहते हैं, ''हम न्याय करने वाले नहीं हैं; हम तो फल देखकर निर्णय करने वाले हैं।'' यदि स्थान मिला, तो हम उन बहुत से पदों पर ध्यान देंगे, जिनमें यह संकेत है कि हमें दूसरों का न्याय करने (दोष लगाने) की आवश्यकता रहती है (रोमियों 16:17; गलतियों 1:8, 9; फिलिप्पयों 3:2; 1 यूहन्ना 4:1)।

यीशु के कहने का क्या अर्थ था (आयत 1क)

यह ज़ोर देने के बाद कि बाइबल की इस आयत में ''दोष लगाना'' का क्या अर्थ नहीं है, अभी हमें इस प्रश्न का कि ''इसका अर्थ *क्या* है?'' उत्तर देना बाकी है।

यूनानी शब्द *krino* का अनुवाद ''दोष लगाना'' हुआ है, जिससे आलोचना के लिए अंग्रेज़ी शब्द ''criticize'' निकला है। हम आम तौर पर ''आलोचना'' को नकारात्मक अर्थ में ही लेते हैं, जिसमें किसी दूसरे पर कीचड़ उछाला जाता है, परन्तु ''आलोचना'' शब्द का अर्थ केवल ''मूल्यांकन करना'' है। यह मूल्यांकन नकारात्मक या सकारात्मक दोनों हो सकता है अर्थात यह बुरा भी हो सकता है, और अच्छा भी, विनाशकारी हो सकता है और रचनात्मक भी। यीशु ने स्वयं सुनने वालों के एक समूह को ''ठीक-ठीक न्याय'' करने के लिए कहा (यूहन्ना 7:24)। फिर तो मत्ती 7:1 दूसरों का न्याय करने के विरुद्ध सम्पूर्ण आदेश नहीं है। हम में परमेश्वर द्वारा दिया गया आलोचनात्मक गुण उन विशेषताओं में से एक है, जो हमें जानवरों से अलग करता है,[6] क्योंकि प्रमाण से हम समझ सकते हैं; हम मूल्यांकन कर सकते हैं; हम निर्णय ले सकते हैं।

फिर भी, यीशु के शब्दों में यह शिक्षा मिलती है कि *एक ऐसी तरह का* न्याय है, जिससे हमें बचना चाहिए। मैं इस विषय को खत्म नहीं करूंगा, बल्कि न्याय के कई पहलुओं का सुझाव देना चाहता हूं, जिसकी यीशु निन्दा करता है। (यहीं पर पहले उल्लेखित उलझाने वाली वह रोशनी पड़ती है, जो हमारे मनों तथा जीवन को सामने लाती है।)

पक्षपातपूर्ण न्याय

अपने न्याय को सजावटी बनाने के लिए अपनी पृष्ठभूमि, पूर्वधारणाएं तथा प्राथमिकताएं एक सामान्य कमज़ोरी हैं, इनसे बचना कठिन है। मुझे बताया गया है कि प्राचीन यूनानी कई बार महत्वपूर्ण मुकदमों को सामने नहीं आने देते थे, ताकि उन्हें तथ्यों से प्रभावित किया जा सके। समाज शास्त्री कहते हैं कि बहुत से लोगों के दोष लगाने वाले होने का एक कारण यह है कि वे ''हीनभावना'' से ग्रस्त होते हैं।[7] हीन भावना से व्यक्ति या तो अपने आप को ऊंचा उठा सकता है या दूसरों की टांगें खींच सकता है-और अधिकतर लोगों को दूसरों की टांगें खींचना आसान लगता है।

असूचित न्याय

हम बिना सभी तथ्यों के या सारी परिस्थितियों को जाने जल्दबाजी में निर्णय करते हैं। (हम में से कुछ लोग परिस्थिति की दो चार ईंटें लेकर आरोप का पूरा मकान बनाना चाहते हैं।) हो सकता है कि हमें इस बात की पूरी जानकारी न हो कि वास्तव में ज़्या हुआ है। हमें आरोपी की पृष्ठभूमि या उद्देश्य की समझ न हो। हो सकता है कि हमें यह पता न हो कि यह उसके जीवन का नियम था या अपवाद। ''ठीक-ठीक न्याय'' करने के लिए यीशु ने सबसे पहले ''मुंह देखकर न्याय न'' करने के लिए कहा (यूहन्ना 7:24क)।

असज़्भव न्याय

बहुत बार जब हम किसी का न्याय करते हैं, तो हम उसके *उद्देश्य* के बारे में न्याय करने का प्रयास करते हैं। ज़्योंकि हम यीशु नहीं हैं, जो ''आप ही जानता था, कि मनुष्य के मन में ज़्या है'' (यूहन्ना 2:25), हमें पता नहीं चल सकता कि दूसरे के मन में ज़्या है। हम कह सकते हैं, ''उसने यह या वह किया,'' परन्तु हम निश्चितता से नहीं कह सकते कि ''उसने यह या वह इसलिए किया *ज़्योंकि* ...।'' पौलुस ने पूछा, ''मनुष्यों में से कौन किसी मनुष्य की बातें जानता (और समझता) है, केवल मनुष्य की आत्मा जो उस में है?'' (1 कुरिन्थियों 2:11क)। इसके बावजूद ऐसी बातें सुनने को मिलती हैं: ''वह अपने आप को बड़ी स्मार्ट समझती है!''; ''उसे लगता है कि वह कुछ है''![8] हम कितनी ही बार दूसरों के उद्देश्य का न्याय करते या उन पर दोष लगाते हैं!

सहानुभूति रहित न्याय

यीशु सबसे बुरी सज़्भावित संरचना को जिस पर लोग अच्छा होने के विपरीत काम करते हैं, टालने की निन्दा भी कर रहा था। 1 कुरिन्थियों 13:7ख का मौज़्फट का अनुवाद है कि प्रेम ''सदा अच्छे पर विश्वास करने को तैयार रहता'' है।[9]

यह सही है कि किसी व्यज़्ति के बारे में, उसके कामों से ही पता चलता है, परन्तु कई बार उसके काम कम से कम दो अलग-अलग व्याज़्याओं में आते हैं: एक अच्छा और एक बुरा। जब ऐसा हो, तो हम सामान्यतया उस व्यज़्ति के काम को किस श्रेणी में रखते हैं?

कठोर न्याय

अभी-अभी वर्णित न्याय के नकारात्मक ढंग के कारण, हम कई बार कठोर, कड़वे और कपटपूर्ण निर्णय ले लेते हैं, जबकि हमें अपने निर्णय दया और प्रेम के साथ लेने चाहिए। पतरस ने कहा है, ''और सब में श्रेष्ठ बात यह है कि एक दूसरे से अधिक प्रेम रखो; ज़्योंकि प्रेम अनेक पापों को ढांप देता है'' (1 पतरस 4:8)।[10]

दूसरों के साथ मिलकर चलना *आत्मा* की बात है। एक ओर, स्नेही और सहानुभूतिपूर्ण आत्मा है, जिसका विश्वास उज़म में है और वह दूसरों को ऊंचा उठाने और उनकी सहायता की कोशिश करता है। दूसरी ओर, कठोर, सहानुभूति रहित दोष लगाने वाला मन है, जिसे

किसी को ''जैसे को तैसा'' मिलते देखकर आनन्द आता है।

जो यीशु ने प्रतिज्ञा की (आयत 1ख, 2)

इस सब को ध्यान में रखकर, हम शेष आयतों अर्थात आयत 1 के साथ आयत 2 पर चर्चा करेंगे।

अनुग्रह की आवश्यकता

यह कहने के बाद कि ''दोष मत लगाओ'' (आयत 1क), यीशु ने कहा, ''कि तुम पर भी दोष न लगाया जाएगा'' (आयत 1ख)। फिर उसने आयत 2 में इस विचार को विस्तार दिया, ''ज़्योंकि जिस प्रकार तुम दोष लगाते हो, उसी प्रकार तुम पर भी दोष लगाया जाएगा; और जिस नाप से तुम नापते हो, उसी से तुज़्हारे लिए भी नापा जाएगा।'' कुछ हद तक, यह सिद्धान्त हमारे वर्तमान युग में लागू होता है। जीवन एक दर्पण है; हमारे साथ आम तौर पर वैसा ही होता है, जैसा हम दूसरों के साथ करते हैं। लूका के वृज़ांत में उपदेश के इस भाग का इसी बात पर ज़ोर दिया होगा:

> दोष मत लगाओ; तो तुम पर भी दोष नहीं लगाया जाएगा: दोषी न ठहराओ, तो तुम भी दोषी न ठहराए जाओगे: क्षमा करो, तो तुम पर भी क्षमा की जाएगी। दिया करो, तो तुज़्हें भी दिया जाएगा: लोग पूरा नाप दबा दबाकर और हिला हिलाकर और उभरता हुआ तुज़्हारी गोद में डालेंगे, ज़्योंकि जिस नाप से तुम नापते हो, उसी से तुज़्हारे लिए भी नापा जाएगा[11] (लूका 6:37, 38)।

द लिविंग बाइबल में लूका 6:37ख का अनुवाद इस प्रकार है ''दूसरों पर दया करो; तो वे भी तुम पर करेंगे।''

परन्तु संदर्भ में, यीशु विशेष तौर पर *परमेश्वर* के न्याय की बात कर रहा था। संसार के कपड़े में बुना गया यह सिद्धान्त इस प्रकार है कि, आज नहीं तो कल, हम वही काटेंगे जो हमने बोया था (गलातियों 6:7)। हामान को उसी फांसी के फंदे पर लटकाया गया, जो उसने मोर्दकै के लिए बनवाया था (एस्तेर 7)। सभोपदेशक 10:8क कहता है कि ''जो गड़हा खोदे वह उसमें गिरेगा।'' मज़ी 7:1, 2 विशेष तौर पर परमेश्वर के *अनन्त* न्याय के लिए है (देखें 7:21-27)। एक दिन हम में से हर एक को प्रभु के सिंहासन के सामने खड़े होकर ''परमेश्वर को अपना-अपना लेखा'' देना है (रोमियों 14:12)। अन्त में, इसी न्याय को सही माना जाएगा।

अपने आप को उस बड़े सफेद सिंहासन के सामने (प्रकाशितवाज़्य 20:11), उस प्रकार से न्याय का सामना करते, जैसे आप दूसरों का न्याय करते थे, उसी माप से नापे जाने की कल्पना करें, जिससे आप दूसरों के लिए नापते थे। यदि आपका न्याय इस तरह से हुआ है, तो आप प्रभु के दाहिनी ओर जाएंगे या बाईं ओर (मज़ी 25:31-33)? याकूब की पुस्तक के कज़्पकज़्पी लगा देने वाले इन शज़्दों पर विचार करें: ''ज़्योंकि जिसने दया नहीं

की, उसका न्याय बिना दया के होगा'' (याकूब 2:13क)।

सहज-बुद्धि की आवश्यकता

शायद मुझे यह कहने के लिए रुकना चाहिए कि मत्ती 7:1-12 में पाए जाने वाले उपदेशों के बारे में, कुछ सहज-बुद्धि का इस्तेमाल करना ज़रूरी है। आयत 1 और 2 में यीशु यह नहीं कह रहा था कि परमेश्वर को न्याय दूसरों का न्याय करने या नहीं करने के कारण होगा। वह यह नहीं सिखा रहा था कि यदि हमें लगे कि हर कोई गलत है, पर उसे सही कहने पर आत्मिक तौर पर स्वीकार कर लेगा। यदि हमारे पास केवल एक ही पहाड़ी उपदेश होता, तो भी हम 7:1, 2 की ऐसी व्याख्या को गलत मानते, क्योंकि उपदेश के अन्त में, यीशु ने कहा, कि उसकी बातें सुनकर मानने वाला (उनमें से एक को भी नज़रअन्दाज न करने वाला) उस बुद्धिमान व्यक्ति की नाईं है, जिसने अपना घर चट्टान पर बनाया (7:24, 25)।

नम्रता की आवश्यकता

अध्याय 7 की पहली दो आयतों में, यीशु ज़ोर दे रहा *था* कि यद्यपि हम दूसरों का न्याय करते रहें, परन्तु अपने बचाव तथा दूसरों की सहायता के लिए हमें यह समझाना आवश्यक है कि हम परमेश्वर नहीं हैं। पौलुस ने इसी सच्चाई पर ज़ोर दिया:

> तू कौन है जो दूसरे के सेवक पर दोष लगाता है? उसका स्थिर रहना या गिर जाना उसके स्वामी ही से सम्बन्ध रखता है, ... (रोमियों 14:4)।

> ... यह बहुत छोटी बात है, कि तुम या मनुष्यों का कोई न्यायी मुझे परखे, ... क्योंकि मेरा मन मुझे किसी बात में दोषी नहीं ठहराता, ... क्योंकि मेरा परखनेवाला प्रभु है। सो जब तक प्रभु न आए, समय से पहले किसी बात का न्याय न करो: वही तो अन्धकार की छिपी बातें ज्योति में दिखाएगा, और मनों की मतियों को प्रगट करेगा, तब परमेश्वर की ओर से हर एक की प्रशंसा होगी (1 कुरिन्थियों 4:3-5)।

जॉन स्टॉट ने लिखा है, ''यीशु हमें मनुष्य बनना बन्द होने के लिए नहीं कहता (अपनी आलोचनात्मक शक्तियों का त्याग करके, जो हमें जानवरों से अलग होने में सहायता करती हैं) बल्कि परमेश्वर बनने (अपने आप को न्याय करने वाले बनाकर) की अतिविश्वासी महत्वाकांक्षा का त्याग करने के लिए कहता है।''[12]

क्योंकि हम परमेश्वर नहीं हैं, इसलिए हमारे न्यायों का दोषपूर्ण होना स्वाभाविक ही होगा। दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों में, हमें याद रखना चाहिए कि अन्ततः हम और वे दोनों ही परमेश्वर के सामने खड़े होंगे-और अन्तिम न्याय *परमेश्वर* ही करेगा। इसलिए आइए हम दूसरों के साथ अपने व्यवहार में दयावान, कृपालु और धीरज रखने वाले बनें!

सारांश

मत्ती 7:1-12 से यीशु हमें यही सिखाना चाहता होगा कि यदि हम लोगों के साथ मिलकर रहना चाहते हैं, तो हमें दोष लगाने वाले होना बन्द कर देना चाहिए। अगले प्रवचन में, हम इन आयतों से पांच अतिरिक्त सुझाव निकालेंगे। यदि हम लोगों के साथ रहना चाहते हैं तो ...

- पहले हमें अपने जीवनों में परिवर्तन लाने आवश्यक हैं (आयतें 3-5)।
- हमें विनम्रता और संवेदनशीलता से दूसरों की सहायता करनी आवश्यक है (आयत 5ख)।
- हमें भिन्नताओं और कठिनाइयों का सामना करना सीखना आवश्यक है (आयत 6)।
- हमारा परमेश्वर पर भरोसा रखने का निश्चय करना आवश्यक है (आयतें 7-11)।
- हमारा जीवन सुनहरी नियम के अनुसार होना आवश्यक है (आयत 12)।

इसी समय हम, प्रभु का निमन्त्रण देना चाहते हैं। यीशु ने कहा कि उद्धार उनके लिए है, जिन्होंने विश्वास किया और बपतिस्मा लिया है (मरकुस 16:16)। उसने कहा, कि जीवन का मुकुट पाने वाले वही हैं, जो मरने तक विश्वासी रहते हैं (प्रकाशितवाक्य 2:10)। अपने प्रेरितों के द्वारा, उसने कहा कि पाप करने वाले मसीही लोगों को मन फिराना और क्षमा पाने के लिए प्रार्थना करना आवश्यक है (प्रेरितों 8:22)। ये डेविड रोपर के ''न्याय'' या निर्णय नहीं हैं; यह परमेश्वर के वचन की स्पष्ट शिक्षा है। इन सच्चाइयों को आपके मानने या न मानने से तय होगा कि आप अनन्तकाल का समय कहां बिताएंगे (मत्ती 7:21-27)। यदि आपके लिए मसीही बनने या विश्वासी मसीही जीवन में वापस आने की आवश्यक है, तो *अभी* आ जाएं।[13]

टिप्पणियां

[1]यह और अगला प्रवचन कई साल पहले तैयार किए गए थे। जितनी सावधानी से अब मैं लिखता हूं कि मैंने कहां-कहां से हवाले लिए हैं, उतनी सावधानी से पहले नहीं लिखता था। जहां जिसे श्रेय देना आवश्यक था, वहां मैंने श्रेय देने की कोशिश की है। जहां किसी को मैं श्रेय नहीं दे पाया, उसके लिए मैं क्षमा चाहता हूं। [2]चार्ल्स बी. विलियम्ज़, *द न्यू टैस्टामेन्ट: ए ट्रांसलेशन इन द लैंग्वेज ऑफ़ द पीपल* (शिकागो: मूडी प्रैस, 1949), 23. [3]पहाड़ी उपदेश के लूका के वृत्तांत में, शिक्षकों के लिए एक हवाला है, जो अन्धों के अन्धे अगुवे थे (लूका 6:39, 40), जो स्पष्ट तौर पर शास्त्री और फरीसियों को कहा गया है (देखें मत्ती 15:12-14)। [4]अमेरिका में ऐसा ही होता है। यदि आवश्यक हो तो इसे आप अपने इलाके के हिसाब से बदल सकते हैं। [5]जो लोग कहते हैं कि किसी दूसरे को गलत कहने वाला व्यक्ति गलत है, वे

अपने आप को दोषी ठहराते हैं। इस पर विचार करें। [6]निश्चय ही, मनुष्य को जानवरों से अलग करने वाला सबसे महत्वपूर्ण गुण यह है कि हम में से हर एक को परमेश्वर के स्वरूप में और अविनाशी आत्मा बनाया गया था। [7]ऐसे व्यवहार को कभी-कभी ''हीन भावना'' कहा जाता है। [8]कुछ ऐसी निर्णायक अभिव्यज्तियां और उदाहरण दें, जिनसे आपके सुनने वाले परिचित हों या उन्हें समझ सकते हों। [9]जेज़्स मॉज़्फट, द *बाइबल: ए न्यू ट्रांसलेशन* (न्यू यॉर्क: हार्पर एण्ड ब्रदर्स, 1954), 217. [10]7:3-5 के सज़्बन्ध में चर्चा किए गए इन पांच सुझावों के अलावा एक और सुझाव अगले प्रवचन में दिया जाएगा। आप चाहें तो इसे इस प्रवचन में भी इस्तेमाल कर सकते हैं।

[11]देने की आशिषों पर लूका 6:38 एक महान आयत है। सामान्य रूप में देने के सज़्बन्ध में प्रासंगिकता बनाई जा सकती है, परन्तु इस संदर्ज़ में यह विशेष तौर पर इस तथ्य के लिए है कि जो दया ''देते'' हैं, उन्हें दया ''मिलेगी।'' [12]जॉन आर. डज़्ल्यू स्टॉट, द *मैसेज ऑ़फ़ द सरमन ऑन द माउंट* (डाउनर्स ग्रोव, इलिनोइस: इन्टरवर्सिटी प्रैस, 1978), 177. [13]इस प्रवचन के अन्त में निमन्त्रण देते हुए, किसी ऐसे व्यज़्ति के साथ जो दोष लगाने वाले मन वाला हो, प्रार्थना के लिए कह कहते हैं।